Toppersnotes
Unleash the topper in you

UP – PGT

स्नातकोत्तर शिक्षक

उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा सेवा चयन बोर्ड

अर्थशास्त्र

भाग – 3

SIERRA INNOVATIONS

UP PGT

अर्थशास्त्र

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	**लोक वित्त** • लोकवित्त के सिद्धान्त, निजी एवं सार्वजनिक वस्तुए • सार्वजनिक व्यय– उद्देश्य, सिद्धान्त एवं आर्थिक प्रभाव, संतलित एवं असंतलित बजट, राजकोषीय, वित्त, क्रियात्मक वित्त एवं यद्ध वित्त, विकासशील अर्थव्यवस्था में राजकोषीय नीति • सार्वजनिक आय– करारोपण के सिद्धान्त, करों का वर्गीकरण, करों में समानता, करभार एवं कर विवर्तन, कर भार के सिद्धान्त, पूंजीकृत कर विवर्तन, दोहराकर एवं कर देय क्षमता	1-64
2.	**सार्वजनिक ऋण** • ऋण भार, कर बनाम ऋण शोधन • केन्द्र एवं राज्य सरकार के वित्त की प्रवृत्तियां, दसवां वित्त, आयोग हीनार्थ, प्रबन्धन	65-154
3.	**आर्थिक विकास एवं भारतीय अर्थव्यवस्था** • आर्थिक विकास की समस्याएं, विकास की अवस्थाएं, विकास माडल–प्रतिष्ठित, हैरोड एवं डोमर माडल • भारत में जनवृद्धि एवं संरचना, जनसंख्या नीति, • राष्ट्रीय आय की नवीन अवधारणाएं, राष्ट्रीय आय की प्रवृत्तियां गरीबी एवं अल्परोजगार की समस्याएं, रोजगार नीति • भारत की नई औद्योगिक नीति एवं उपक्रम, लघु एवं कुटीर औद्योगिक नीति, निर्यात संवर्द्धन, सामाजिक सुरक्षा एवं श्रम कल्याण	155-238

	• प्रारंभिक सांख्यकी–सांख्यकी का अर्थ एवं महत्व, बिन्दुरेखीय प्रदर्शन, केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप, मध्य का भूमष्ठिक, प्रमाणिक विचलन एवं सह सम्बन्ध	

लोक वित्त/राजस्व की प्रकृति व क्षेत्र
(Nature and Scope of Public Finance)

लोक वित्त के लिए राजस्व शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। राजस्व शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है : राजन् + स्वः, जिसका अर्थ होता है 'राजा का धन' । राजतन्त्र में राजा समाज का प्रमुख होता था, अतः 'राजस्व' वास्तव में राजा का धन होता था। राजा जो कर वसूल करता था वह उसकी सम्पत्ति मानी जाती थी और वह उसको मनमाने ढंग से व्यय कर सकता था। न तो उसे बजट बनाने की आवश्यकता थी, नहीं किसी के अनुमति की।

अंग्रेजी शब्द 'Public Finance' भी दो शब्दों से मिलकर बना है : Public तथा Finance | यहाँ 'Public' शब्द से तात्पर्य है : Public Authorities (सार्वजनिक सत्तायें अथवा सरकारें) तथा 'Finance' शब्द का अर्थ है : आय प्राप्त करना तथा व्यय करना।

<u>परिभाषा</u> – डाल्टन, ''लोक वित्त सार्वजनिक अधिकारियों के आय तथा व्यय एवं इनके पारस्परिक समन्वय का अध्ययन है।''

"Public Finance deals with the income and expenditure of public authorities and with their mutual adjustment-"
भारत के प्रमुख प्रोफेसर, फिन्डले शिराज के अनुसार, लोक वित्त का सम्बन्ध सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा आय प्राप्त करने व व्यय करने के तरीके से है।''

"---------- Public Finance ---------- may be said to be concerned with the manner in which public authorities obtain their income and spend it-"

स्पष्टीकरण 1. सार्वजनिक अधिकारियों से अभिप्राय विभिन्न प्रकार की सरकारों से होता है, उदाहरणार्थ भारतवर्ष में सार्वजनिक अधिकारियों के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय सरकारें जैसे नगर निगम, नगर पालिकायें, जिला परिषद (District Board) ग्राम पंचायतें आदि सम्मिलित हैं।

आधुनिक काल में सरकारों की आयदृव्यय लगभग पूर्णतया धन के रूप में ही होती है अर्मौद्रिक आयदृव्यय की मात्रा नगण्य होती है।

उपर्युक्त स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए लोक वित्त की निम्न परिभाषा दी जा सकती है :
''लोक वित्त को कुछ अन्य नामों से भी पुकारा गया है जैसे सार्वजनिक वित्त, राजकीय वित्त, राजस्व।

लोक वित्त विज्ञान है अथवा कला

राजस्व की प्रकृति क्या है, अर्थात् राजस्व विज्ञान है अथवा कला या दोनों, इस प्रश्न को भलीभाँति स्पष्ट कर देना उपयुक्त होगा। इस सम्बन्ध में हमें यह देखना होगा, कि विज्ञान क्या है ? और कला क्या है ?

राजस्व विज्ञान है – विज्ञान वह शास्त्र है, जिसमें हमे ज्ञान, क्रम–बद्ध या व्यवस्थित रूप से प्राप्त होता है (Systematized knowledge of any subject is called science) जब नियम बना दिये जाते हैं तो ज्ञान की एक शाखा विज्ञान हो जाती है। इस प्रकार ज्ञान के क्रम बद्ध संग्रह को जिसका उद्देश्य किसी तथ्य के बीच कारण व परिणाम का सम्बन्ध स्थापित करना होता है, विज्ञान कहते हैं।

प्लेहन (Plehn) ने राजस्व को एक 'विज्ञान' माना है और इस सम्बन्ध में यह तर्क दिया है कि इस विज्ञान में अर्थात् 'राजस्व' में तथ्यों तथा सिद्धान्तों का नियमपूर्वक संग्रह किया जाता है तथा राजस्व के अध्ययन तथा अन्वेषण में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। यहाँ यह बात भी ध्यान योग्य है कि राजस्व एक आश्रित विज्ञान है, जिसका दो बडे विज्ञानों–अर्थशास्त्र और राजनीति–शास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा यह उन दोनों पर आश्रित है।

विज्ञान दो प्रकार के हो सकते हैं : वास्तविक विज्ञान (Positive Science), तथा आदर्शवादी विज्ञान (Normative Science) । वास्तविक विज्ञान किसी घटना के कारण तथा परिणाम का अध्ययन करता है और बताता है कि 'वस्तु की स्थिति' क्या है, यहाँ केवल इस प्रश्न का उत्तर दिया जाता है कि ''यह या वह क्या है ?'' इस प्रकार वास्तविक विज्ञान उस दीप–स्तम्भ (Light house) की तरह है जो जहाज को प्रकाश दिखाता है और बताता है कि यहाँ चट्टान है, परन्तु यह नहीं कहता कि जहाज को उत्तर की ओर जाना चाहिए या दक्षिण की ओर। इसके विपरीत, आदर्शवादी विज्ञान में हम अपना आदर्श निर्धारित करते हैं, अर्थात आदर्श विज्ञान बताता है कि ''क्या होना चाहिए।'' कीन्स के अनुसार वास्तविक विज्ञान को क्रमबद्ध ज्ञान का एक समूह कह सकते हैं और आदर्श विज्ञान को ज्ञान का वह पुन्ज कहते हैं जिसका सम्बन्ध आदर्शों को स्थापित करने से होता है। उदाहरण के लिये, वास्तविक विज्ञान हमें बतलाता है कि शराब पीने से मनुष्य अपना मानसिक संतुलन खो देता हैय वास्तविक विज्ञान का काम यह बताना नहीं है कि शराब पीना अच्छा है अथवा बुरा। लेकिन आदर्शवादी विज्ञान हमें यह बतलायेगा कि चूंकि शराब पीना बुरी आदत है, इसलिये हमें शराब नहीं पीनी चाहिये।

राजस्व एक वास्तविक विज्ञान है इस बारे में निम्न उदाहरण पेश किये जा सकते हैं :–

1. मान्य सिद्धांतों के आधार पर ही सार्वजनिक आय, व्यय एवं ऋण का निर्धारण होता है।
2. राजस्व के नियम कार्य–कारण का सम्बन्ध भी बताते हैय जैसे, धनीवर्ग से अधिक कर तथा निर्धन वर्ग से कम कर लेने के फलस्वरूप समाज में धन की विषमता कम होती है।

राजस्व एक आदर्शवादी विज्ञान है, इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण प्रस्तुत है :–

1. राजस्व हमे बताता है कि समाज में आर्थिक विषमतायें कम करने के लिये धनी वर्ग पर अधिक और गरीब वर्ग पर कम कर लगाना चाहिए।
2. चूंकि अनुत्पादक कार्यों से देश की आर्थिक प्रगति नहीं होती, अतः अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण नहीं लेना चाहिए। इस प्रकार के अनेक आदर्श राजस्व में पाये जाते हैं।

राजस्व कला भी है :- कला का अर्थ किसी विज्ञान के प्रयोगात्मक रूप से है। जहाँ 'विज्ञान' ज्ञान है वहाँ शकलाश क्रिया है। दूसरे शब्दों में किसी कार्य को करने के लिये व्यावहारिक नियमों का बताना ही कला है। राजस्व एक कला का रूप उस समय धारण कर लेता है जब सार्वजनिक आय और व्यय के सिद्धांतों एवं नीतियों को देश की वित्तीय समस्याओं को हल करने में प्रयोग किया जाता है।

राजस्व एक कला है, इस सम्बन्ध में निम्न उदाहरण दिये जा सकते हैं :-

1. कर का साधारणतया विरोध होता हैय अतः किस वर्ग पर कितना कर लगाया जाय और किस समय लगाया जाय, यह राजस्व का कला पक्ष बताता है।
2. सरकार के द्वारा प्राप्त आय को किन-किन मदों पर व्यय किया जाय, ताकि अधिकतम सामाजिक लाभ प्राप्त हो, यह भी राजस्व का कला पक्ष बताता है।

अन्त में, निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते है कि राजस्व कला तथा विज्ञान दोनों ही है।

परम्परागत वित्त, कार्यात्मक वित्त तथा कार्यशील वित्त (Traditional Finance] Functional Finance and Activating Finance) :- सन् 1870 से 1930 तक राजस्व के अन्तर्गत जिन विचारों का अध्ययन होता था उन्हें परम्परागत वित्त (Traditional finance) की संज्ञा दी गई है। इसे रूढिवादी वित्त (Orthodox finance) अथवा दृढ वित्त (Sound finance) तथा अकार्यात्मक वित्त (Non&functional finance) भी कहा गया है। सन् 1936 में कीन्स की जनरल थ्योरी के प्रकाशन के बाद राजस्व की नीतियों में भी काफी परिवर्तन हुआ। इस नई विचारधारा को कार्यात्मक वित्त (functional finance) के नाम से पुकारा गया है।

परम्परागत राजस्व (**Traditional finance**)

परम्परागत राजस्व का प्रमुख सिद्धान्त यह था कि सरकार को अपना बजट संतुलित रखना चाहिये। संतुलित बजट का अर्थ यह है कि अपना व्यय करने के लिये सरकार को समस्त धन कर के द्वारा प्राप्त करना चाहिये या फिर सरकार को अपना व्यय कर से प्राप्त धनराशि के भीतर ही करना चाहिए। सार्वजनिक ऋण एक बुराई है तथा यदि ऋण लिया ही जाय तो आपत्तिकालीन परिस्थितियों के लिये या फिर उत्पादक कार्यो के लिये जिनसे प्राप्त आय से ऋण और उस पर ब्याज चुकाया जा सके।

"The traditional theory maintains that it is a sound principal of public finance to keep the budget balanced- Normally, a balanced budget is one in which the expenditure of the state is equal to its revenue from sources other than loans- In other words, a balanced budget is one in which there is no public debt- However, the traditional theory allows the financing of certain types of eÛpenditure by loans-
"

Professor J-K- Mehta] chapter on 'functional finance vs- orthodox finance' in Studies is Economic Theory and Economic Philosophy, P-166.

इस प्रकार परम्परागत राजस्व के अन्तर्गत राजस्व नीति को आय तथा व्यय का एक सीधा-सादा लेखा-जोखा माना जाता था। प्राचीन राजस्वशास्त्रियों के अनुसार राजस्व में उन सिद्धान्तों का विवेचन किया जाता है जिनके अनुसार सरकार सार्वजनिक कार्यों को पूरा करने के लिये आय प्राप्त करती है तथा उसका व्यय करती है। यह सार्वजनिक कार्य उन्नीसवीं शताब्दी में बहुत सीमित थे, जैसे विदेशी आक्रमण में सुरक्षा, देश में आंतरिक शांति, आदि। धीरे-धीरे राज्य के कर्तव्यों में प्रसार हुआ और कल्याणकारी कार्य भी शामिल किये गये। फिर भी राजस्व का क्षेत्र उन्हीं सिद्धान्तों के अध्ययन तक सीमित रहा जिनके अनुसार सार्वजनिक कार्यों की पूर्ति के लिये धन की प्राप्ति तथा उसका व्यय होता है। विभिन्न सार्वजनिक कार्यों की पूर्ति हेतु सुचारू रूप में जनता से धन प्राप्त करना तथा उसे निपुणतापूर्वक व्यय करना, यही परम्परागत राजस्व की विषय सामग्री रही है। उदाहरण के लिये, कर प्रणाली न्यायोचित, सुविधाजनक हो तथा समानता के सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

परम्परावादी वित्त इस मान्यता पर आधारित है, कि निजी विनियोग स्वयं पूर्ण रोजगार की स्थिति स्थापित करते हैं। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों का मत था, कि पूर्ति स्वयं अपनी माँग उत्पन्न कर लेती है, और निजी विनियोग सभी उपलब्ध साधनों का उपयोग कर लेता है, यदि मजदूरी, ब्याज व अन्य मूल्यों में पर्याप्त लोच हो। उनका विश्वास था, कि सरकार राजकीय विनियोग या सरकारी व्यय से किसी भी प्रकार सक्रिय माँग में वृद्धि नहीं कर पाती, क्योंकि जो धन सरकार प्रयोग करेगी, वह निजी उद्योगपतियों को वंचित करके ही कर सकती है।

कार्यात्मक वित्त (**Functional Finance**)

केन्स ने अपनी इजनरल थ्योरीज में इस बात पर बल दिया, कि राजस्व-नीतियों द्वारा अर्थ-व्यवस्था की प्रवृत्तियों को प्रभावित किया जा सकता है। लर्नर ने इस विचारधारा को और आगे बढाया और बताया, कि करारोपण का उद्देश्य केवल धन एकत्रित करना ही नहीं है, बल्कि मुद्रास्फीति को रोकना है तथा सरकारी व्यय का उद्देश्य पूर्ण रोजगार की दशाओं को उत्पन्न करना है। इसी विचार को कार्यात्मक वित्त कहते हैं। दूसरे शब्दों में करारोपण मुद्रा-स्फीति को दूर करने तथा सार्वजनिक व्यय, बेकारी दूर करने में सहायक होता है। कार्यात्मक वित्त के बारे में दो बातें ध्यान योग्य है -

1. सरकार का यह कर्तव्य है, कि जिन वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन सम्भव है, उन पर व्यय की सम्पूर्ण दर को उस स्तर तक रखें जिस पर वे सभी वस्तुयें वर्तमान मूल्यों पर खरीदी जा सकें ; तथा
2. सरकार ऐसा करने की स्थिति में तभी हो सकती है जब वह राजस्व सम्बन्धी क्रियाओं (functions) का प्रयोग करें।

एक उल्लेखनीय बात यह है कि कार्यात्मक वित्त के अन्तर्गत सरकार का उद्देश्य केवल मुद्रास्फीति व मुद्रा-संकुचन को रोकना नहीं होता। सर्वप्रथम, सरकार को अन्य कारणों व उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए करों व व्यय का निर्धारण करना चाहिए। इसके पश्चात् इस प्रकार निर्धारित कुल करारोपण एवं सार्वजनिक व्यय के प्रभावों को ध्यान में रखते हुए मुद्रा-स्फीति अथवा मुद्रा संकुचन जैसी स्थिति हो, उसे रोकने के लिये बजट में घाटे या बचत की व्यवस्था करनी चाहिये।

"The government has of course many other objectives besides the prevention of inflation and deflation- Functional Finance is merely the balancing them- After all

the other uses of the instruments (taxation and public expenditure) have been decided upon- Functional Finance prevents the total effect from resulting in inflation or deflation (Lerner, op- cit., P-137)

कार्यशील वित्त (**Activating Finance**)

डा. बलजीत सिंह ने अविकसित देशों के लिए कार्यशील वित्त को क्रियात्मक वित्त से बेहतर बताया है।

कार्यशील वित्त के अनुसार हम यह ज्ञात करते है कि विभिन्न रीतियाँ किस प्रकार अर्थ–व्यवस्था में स्फूर्ति उत्पन्न करती है। कार्यशील वित्त यह अपेक्षा करता है कि राज्य ऐसे राजकोषीय समायोजन करे ताकि विनियोग का प्रवाह बना रहे एवं साधनों का आदर्श उपयोग होकर राष्ट्रीय आय में वृद्धि हो सके।

प्रो0 बलजीत सिंह ने यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया कि कीन्स और लर्नर के विचार केवल विकसित देशों के लिये ही उपयुक्त है जहाँ कि व्यय का अधिक महत्व है। इन अर्थ–व्यवस्थाओं में व्यय (Spending) के द्वारा चाहे वह सार्वजनिक हो अथवा वैयक्तिक बेकारी तथा मुद्रा–प्रसार का निवारण किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, व्यापक आर्थिक मन्दी में वैयक्तिक अथवा सार्वजनिक व्यय द्वारा प्रभावोत्पादक माँग में वृद्धि करके उत्पादन क्रिया को बनाये रखकर बेकारी दूर की जा सकती है। इसके विपरीत, विकासशील देशों में राजकोषीय नीतियों का नियमन व संचालन इस प्रकार से होना चाहिए कि सभी सम्भाव्य साधनों को रोजगार में लगाकर उत्पादन एवं आय में वृद्धि के प्रयास होने चाहिए। इस के लिए विकासशील देशों को बचत एवं विनियोजन पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

राजस्व का विकास

प्राचीन काल में राजस्व

राजस्व की विचारधारा को लगभग उतना ही प्राचीन कहा जा सकता है जितना प्राचीन स्वयंश राज्यश का अस्तित्व है। भारत, मिश्र, यूनान आदि प्राचीन देशों में राजस्व के नियमों व नीतियों का प्रादुर्भाव हो गया था। प्राचीन सभ्यताओं की राजस्व प्रणालियाँ प्रमुखतः पराजित देशों से वसूल किये गये करों पर निर्भर करती थी। इसके अलावा, अप्रत्यक्ष कर जैसे भूमि हस्तांतरणों तथा व्यापारिक सौदों पर कर भी लगाये जाते थे। रोम साम्राज्य में उत्तराधिकार कर तथा सामान्य बिक्री कर भी लगाया जाता था।

भारत में मनुस्मृति तथा चाणक्य के अर्थशास्त्र में हमे करारोपण तथा राजकीय व्यय की व्यवस्था के बारे में सिद्धान्तों का विवरण मिलता है। ग्रीक युग की एक छोटी पुस्तक 'Athenian Revenues' जिसके लेखक Xenophon थे उल्लेखनीय है। प्लेटो तथा एरिस्टाटिल के लेखों में भी राजकोषीय विषयों पर टिप्पणियाँ प्राप्त होती है। रोम के इतिहासकारों के लेखों में भी रोमन राजकोषीय प्रणालियों का विश्लेषण तथा समालोचना मिलती है।

ग्यारहवीं शताब्दी और उसके बाद इटली तथा उत्तर योरोप के नगर–राज्यों में राजकीय क्रियाएँ काफी विस्तृत हो चुकी थी और उनकी पूर्ति के लिये आय की आवश्यकता भी स्वाभाविक थी। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त में, इन नगर–राज्यों में राजस्व पर कई पुस्तकें लिखी गई। सन् 1576 में जीन वोडिन (Jean Bodin),

एक फ्रेंचलेखक की पुस्तक Six livers sur lare' publ'que प्रकाशित हुईय इसमें बोडिन ने सार्वजनिक आय के श्रोतों का अध्ययन किया।

सत्रहवीं शताब्दी में इग्लैंड में व्यापारवादियों ने करारोपण के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किएय इस सम्बन्ध में सर बिलियम पेट्टी (Shri William Petty) की कृति A Treastise of Taxes and Contributions (1662) उल्ले खनीय है।

अट्ठारहवीं शताब्दी के दौरान राजस्व के क्षेत्र में फ्रांस, आस्ट्रिया तथा इग्लैंड में महत्वपूर्ण योगदान किये गये। फ्रांस में वाबन (Vauban) की पुस्तक Project de dime royale जो सन् 1707 में प्रकाशित हुई, फ्रांस की अप्रत्यक्ष कर प्रणाली की समालोचना है। मान्टेस्क्यू (Montesquieu) ने अपनी पुस्तक Lesprit des lois (1748) में फ्रांस की कर प्रणाली का अध्ययन किया। फिजियोक्रेटस जैसे क्वेसने (Quesnay), टरगाट (Turgot) ने इस शताब्दी के दूसरे भाग में सब तत्कालीन अप्रत्यक्ष करों के स्थान पर एक 'भूमि पर कर' लगाने का सुझाव दिया था। 18वीं शताब्दी के जर्मन विचारकों जिन्हें सामूहिक रूप में 'कैमरालिस्टस पुकारा गया है, ने भी राजस्व–नीतियों पर अपने विचार प्रगट किये थे। इनमें Von Jutsi का नाम उल्लेखनीय हैय इनकी पुस्तक का नाम Staatswirtschaft (1775) है।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एडम स्मिथ ने राजस्व के सिद्धान्तों को एक और व्यवस्थित रूप प्रदान किया। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक वैल्थ आफ नेशन्सस (1776) में राजस्व सम्बन्धी विषयों पर अपने विचार प्रगट किए। एडम स्मिथ ने सार्वजनिक व्यय का विस्तृत विश्लेषण किया तथा सार्वजनिक ऋण पर सर्वप्रथम अपने विचार प्रस्तुत किए। एडम स्मिथ द्वारा बताये गये चार करारोपण के सिद्धान्तों–समानता, निश्चितता, सुविधा तथा मितव्ययता के सिद्धान्त–का आज भी आधारभूत महत्व है। इन सिद्धान्तों के द्वारा स्मिथ ने सिद्ध किया था, कि कर प्रणाली का उद्देश्य केवल राज्य के लिये वित्तीय साधन जुटाना ही नहीं है बल्कि कर संग्रह में करदाता की सुविधा तथा करदान क्षमता का भी ध्यान रखना चाहिए। सार्वजनिक व्यय की दृष्टि में स्मिथ ने राजकीय कर्तव्यों में देश की सुरक्षा, न्याय एवं आंतरिक शांति तथा सार्वजनिक कार्यों जैसे सडकों, पुल, नहरों तथा शिक्षा को स्थान दिया।

एडम स्मिथ के उपरान्त 19वीं शताब्दी में कुछ प्रमुख लेखकों ने राजस्व की विचारधारा के विकास में अपना योगदान किया। इस सम्बन्ध में रिकार्डो, मैकुलाह, तथा जे.एस. मिल विशेष है। जर्मन विद्वान वैगनर (Finanz wissen schaft, 1080) तथा इटालियन राजस्वशास्त्री विटी डिमार्को (First Principles of Public Finance) ने भी महत्वपूर्ण योगदान किये। 19वीं शताब्दी के अमरीकन लेखकों और उनकी रचनाओं में हम निम्न का उल्लेख कर सकते है ;

Henry C- Adams---------- The Science of Public Finance (1898)
Seligman---------- The Shifting and Incidence of Taxation (1892)
Progressive Taxation (1894)

बीसवीं शताब्दी में, विशेषकर, तीसा (1930's) के महामन्दी काल के बाद आर्थिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों व पहलुओं में राज्य का हस्तक्षेप स्वीकार किया गया तथा फलस्वरूप राजस्व के अध्ययन को विशेष महत्व प्राप्त हो गया। जनतन्त्रात्मक गणराज्यों के उद्भव, समाजवादी विचारधारा की प्रधानता तथा विश्व के विभिन्न भागों में होने वाली राजनैतिक व आर्थिक क्रान्तियों ने एक अधिक प्रगतिशील आय-नीति तथा अधिक उदार राजकीय व्यय-नीति को जन्म दिया।

राजस्व का उद्देश्य अब सरकार के लिए धन एकत्र करना मात्र नहीं रहा, बल्कि आर्थिक स्थायित्व प्राप्त करने, आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देने, सामाजिक न्याय प्राप्त करने और पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने का उसे एक शक्तिशाली साधन माने जाने लगा। इस सम्बन्ध में कीन्स, हैन्सन एवं लर्नर के विचार उल्लेखनीय हैं। कीन्स एवं हैन्सन ने राजकोषीय नीति (Fiscal Policy) के महत्व को बताया। तदनुसार, यह आवश्यक माना गया कि उपभोग में स्थायित्व लाया जाय और उसका उपयुक्त ढंग से नियमन हेतु क्षतिपूरक कार्यवाही की जाय ।

लर्नर जिन्होंने क्रियाशील वित्त के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया बताया, कि करारोपण का उद्देश्य सार्वजनिक वित्त के लिए केवल वित्त एकत्रित करना मात्र नहीं है बल्कि इसका मूल उद्देश्य मुद्रास्फीति को रोकना है। इसी प्रकार सार्वजनिक व्यय का उद देश्य कुछ वांछनीय दिशाओं में सरकारी धन को खर्च करना न होकर देश में पूर्ण रोजगार की अवस्था को प्राप्त करना है। यहाँ यह भी बताना उपयुक्त होगा कि क्रियात्मक वित्त का उद्देश्य विकसित, तथा अल्प विकसित देशों में भिन्न होगाय विकसित देशों में इसका प्रयोग अर्थ-व्यवस्था के स्थायित्व के लिये किया जाता है, जबकि अल्प विकसित देशों में आर्थिक विकास की गति में वृद्धि करने के लिए।

Toppersnotes Unleash the topper in you

<u>लोकवित्त के विभाग एवं क्षेत्र</u>

1. सार्वजनिक व्यय (Public Expenditure)
2. सार्वजनिक आय (Public Revenue)
3. सार्वजनिक ऋण (Public Debt)
4. वित्तीय प्रशासन (Financial Administration)
5. राजकोषीय नीति (Fiscal Policy)

<u>सार्वजनिक व्यय</u>

अपने कार्यो को पूरा करने के लिए सरकार जो धन-राशि व्यय करती है उसे सार्वजनिक व्यय कहते हैं। आधुनिक युग में सरकारें बहुत अधिक मात्रा में तथा अनेकों विषयों पर व्यय करती हैं, अतः सार्वजनिक व्यय राजस्व का एक प्रमुख विभाग है।

इस विभाग के अन्तर्गत जिन बातों का अध्ययन किया जाता है उनमें से प्रमुख निम्न हैं :-

1. किन-किन मदों पर सरकारी व्यय होना चाहिए और किन पर नहीं अर्थात् सार्वजनिक व्यय का क्षेत्र।
2. सार्वजनिक व्यय कितने प्रकार के होते हैं अर्थात् सार्वजनिक व्यय का वर्गीकरण।
3. सार्वजनिक व्यय करने में किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए अर्थात् सार्वजनिक व्यय के सिद्धान्त।
4. सार्वजनिक व्यय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पडता है अर्थात् सार्वजनिक व्यय के प्रभाव ।

सार्वजनिक आय

सार्वजनिक व्यय करने के लिए आवश्यक धनराशि जुटाना नितांत आवश्यक है। अतः सार्वजनिक आय भी राजस्व का प्रमुख अंग है। सार्वजनिक आय से अभिप्राय सरकार द्वारा प्राप्त किये गये उस धन में से है जिसकी कि वापसी नहीं की जाती ।

वे प्रमुख बातें जिनका अध्ययन इस विभाग के अन्तर्गत किया जाता है निम्न है :-

1. सार्वजनिक आय के कौन-कौन से साधन है अर्थात् सार्वजनिक आय का वर्गीकरण।
2. कर, जो कि सार्वजनिक आय का एक प्रमुख साधन है, कितने प्रकार के होते है, अर्थात् कर का वर्गीकरण।
3. कर लगाने में किन-किन बातों पर ध्यान देना चाहिए अर्थात् करारोपण के सिद्धान्त।
4. जनता की कर देने की शक्ति से क्या तात्पर्य है और यह किन-किन बातों पर निर्भर करती है अर्थात् करदेय क्षमता का अर्थ तथा उसके निर्धारक तत्व।
5. किन कारणों से एक करदाता कर का भार किसी अन्य व्यक्ति पर डालने में सफल होता है अर्थात् कर विवर्तन के तत्व।
6. सार्वजनिक आय का देश के उत्पादन तथा आर्थिक वितरण पर क्या प्रभाव पडता है अर्थात् सार्वजनिक आय के प्रभाव ।

सार्वजनिक ऋण

सार्वजनिक ऋण भी राजस्व का एक महत्वपूर्ण विभाग है क्योंकि सार्वजनिक व्यय की पूर्ति के लिए आवश्यक धनराशि जुटाने में सरकार को बहुधा देश-विदेश से ऋण भी लेना पडता है। सार्वजनिक ऋण की एक प्रमुख विशेषता यह है कि सरकार को ऋण के रूप में प्राप्त धनराशि की वापसी भी करनी पडती है और साधारणतया वापसी की तिथि तक के लिए ब्याज भी चुकाना पडता है।

सार्वजनिक ऋण से सम्बन्धित जिन बातों का अध्ययन इस विभाग में किया जाता है, उसमें से निम्न उल्लेखनीय है :-

1. किन-किन परिस्थितियों में सरकार के लिए ऋण लेना वांछनीय होगा अर्थात् सार्वजनिक ऋण का क्षेत्र।
2. सार्वजनिक ऋण कितने प्रकार के होते है, अर्थात सार्वजनिक ऋण का वर्गीकरण।
3. किन दशाओं में ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन दशाओं में कर लगाना अर्थात् ऋण और कर की तुलना।
4. किन दशाओं में देश के भीतर से ऋण लेना अधिक उपयुक्त होगा और किन में विदेशों से अर्थात् आन्तरिक तथा वाह्य ऋण की तुलना।
5. घाटे का वित्त प्रबन्ध क्या होता है, किस सीमा तक घाटे का वित्त प्रबन्ध किया जा सकता है और उसके क्या प्रभाव होते है अर्थात् घाटे के वित्त प्रबन्ध का अर्थ, सीमा तथा प्रभाव।
6. ऋण की वापसी के कौन से तरीके है और उनमें से हर एक के क्या गुण व दोष है अर्थात् सार्वजनिक ऋण के शोधन के सिद्धान्त ।
7. ऋण के क्या प्रभाव होते है ?

वित्तीय प्रशासन

वित्तीय प्रशासन से अभिप्राय उस शासन-व्यवस्था एवं संगठन से है जिसकी स्थापना सरकार अपनी विभिन्न क्रियाएँ करने के लिए करती है।

वित्तीय प्रशासन के अन्तर्गत निम्न प्रमुख प्रश्नों के बारे में अध्ययन किया जाता है -

1. बजट किस प्रकार तैयार, पास तथा कार्यान्वित किया जाता है ?
2. विभिन्न करों का एकत्रण किन-किन अधिकारियों तथा संस्थाओं द्वारा होता है ?
3. व्यय विभागों का संचालन क्यों कर होता है ?
4. सार्वजनिक लेखों के लिखने तथा उनके आडिट के लिए कौन-कौन से विभाग तथा अधिकारी होते हैं तथा उनके क्या-क्या अधिकार तथा उत्तरदायित्व हैं ?

वेस्टेबल ने राजस्व के इस विभाग की आवश्यकता तथा महत्व पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार कोई भी वित्त की पुस्तक पूर्ण नहीं कही जा सकती, जब तक कि वह वित्तीय प्रशासन और बजट की समस्याओं का अध्ययन नहीं करती।

राजकोषीय नीति

राजकोषीय नीति का अर्थ है कि कुछ आर्थिक उद्देश्यों जैसे आर्थिक स्थायित्व (economic stibilization) व आर्थिक विकास (economic development) की पूर्ति के लिए करारोपण, सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण का उपभोग करना। अतः राजस्व के इस विभाग के अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि देश में आर्थिक स्थिरता लाने के लिए अथवा आर्थिक विकास के लिए राजकोषीय नीति का उपयोग किस प्रकार किया जाता है। राजकोषीय नीति के अध्ययन की महत्ता सन् 1930 की महामन्दी के पश्चात् आरम्भ हुई। आधुनिक युग में राजकोषीय नीति का महत्व राजस्व के पश्चात आरम्भ हुई। आधुनिक अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार किया जाने लगा है। यह बात अब समान रूप से स्वीकार की जाती है कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं की मुख्य समस्या व्यावसायिक दशाओं (business conditions) में स्थिरता लाने (stability) की होती है जबकि अविकसित व अल्पविकसित अर्थव्यवस्था की मुख्य आर्थिक समस्या तीव्र आर्थिक विकास है। इन दोनों ही समस्याओं के हल में राजकोषीय नीति का सकरात्मक व महत्वपूर्ण योगदान होता है।

लोक वित्त/राजस्व का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध

1. राजस्व एवं अर्थशास्त्र (Public Finance and Economics) :- डाल्टन राजस्व अर्थशास्त्र की सीमा पर स्थित है। इस कथन से स्पष्ट है कि राजस्व व अर्थशास्त्र दोनों ही एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। अर्थशास्त्र एक वृहत शब्द है तथा राजस्व उसका ही एक भाग है। राजस्व का विकास अर्थशास्त्र के विकास के साथ-साथ ही हुआ है। राजस्व के सिद्धान्त जानने हेतु अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों को भी जानना आवश्यक होगा जैसे कि (1) नवीन कर लगाने से पूर्व वित्तमन्त्री को माँग की लोच एवं मार्ग का नियम समझना आवश्यक हो जाता है। (2) जमा के भुगतान के ढंगों का अध्ययन करने हेतु मुद्रा साख तथा बैंकिग का ठोस ज्ञान आवश्यक है। (3) सार्वजनिक आय को विभिन्न मदों पर किस प्रकार व्यय किया जाय, इसके लिए सम सीमान्त उपयोगिता नियम का सहारा लेना पडता है। बैस्टेबल का मत है कि ''राजस्व के विद्यार्थी को अर्थशास्त्र'' का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। एडम्स का मत है कि ''राजस्व की सुदृढ नीति राजनीतिक अर्थ व्यवस्था की पूर्ण जानकारी पर निर्भर करती है।''

2. <u>राजस्व एवं राजनीतिक शास्त्र (Public Finance & Political Science)</u> :- डाल्टन का मत है कि राजस्व अर्थशास्त्र एवं राजनीति शास्त्र की मध्यवर्ती सीमा पर स्थित है। राजनीतिशास्त्र ऐसे आधार प्रस्तुत करती है जिन पर राजस्व के नियम लागू होते हैं। राजनीतिशास्त्र राजस्व के अध्ययन करने में सहायता प्रदान करता है। उदाहरणार्थ करारोपण के प्रभाव का पूर्ण रूप से उस समय तक अध्ययन नही किया जा सकता जब तक कि देश के राजनीतिक ढाचें का भली प्रकार से अध्ययन न कर लिया जाय। राजनीतिशास्त्र एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ से राजस्व के नियमों की खोज की जाती है। (राज्य की वित्तीय नीतियाँ इस बात पर आधारित होती है कि उस देश का राजनीतिक ढाचा कैसा है, उस देश की राजनीतिक अभिलाषाये क्या है तथा वही राजनीतिक जागृति कितनी है) एक परतन्त्र देश की आर्थिक नीति एक स्वतंत्र देश से मिला होता है)

3. <u>राजस्व एवं सांख्यिकी (Public Finance & Statistics)</u> :- राजस्व की उपयुक्त नीतियों के निर्धारण के लिए सही एवं वैज्ञानिक आकडों का पर्याप्त ज्ञान नितान्त आवश्यक है। करो से सरकार को कितनी आय होती है, राष्ट्रीय आय का कितना प्रतिशत करों से मिलता है नागरिकों पर कर का भार कैसा पड रहा है। कर दाता की कर देय क्षमता क्या है करों और सार्वजनिक व्यय का पूँजी निर्माण उत्पादन व वितरण पर क्या और कितना प्रभाव पड रहा है। सार्वजनिक ऋण का भार कितना है, इन सब बातों का सही ज्ञान आकडों द्वारा ही जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त सांख्यिकी के विभिन्न सूत्रों एवं विधियों के ज्ञान द्वारा ही सरकारी आय, व्यय तथा ऋण सम्बन्धी आकडों को एकत्रित करके तथा उनका वैज्ञानिक विश्लेषण करके ही लाभकारी व उपयोगी तथ्यों की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। बजए तैयार करने में आकडों ली जाती है। अतः राजस्व और सांख्यिकी का अविच्छेद सम्बन्ध है।

4. <u>राजस्व व कानून (Public Finance & Law)</u> :- किसी देश की राजस्व प्रणाली व नीतियाँ वैज्ञानिक आधार पर ही स्थित होती है। राजस्व के अध्ययन में निम्न तीन कानूनी विषयों का ज्ञान बहुत ही उपयोगी होता है, (1) संविधान में वित्तीय व्यवस्था (2) विभिन्न कर अधिनियम (3) कर अधिनियमों से सम्बन्धित न्यायालयों द्वारा विचार एवं निर्णय अतः स्पष्ट है कि राजस्व कानून से भी विशेष लगता है।

5. <u>राजस्व व अन्य शास्त्र</u>
   (अ) <u>राजस्व व इतिहास</u> – विभिन्न राष्ट्रों के इतिहास के अध्ययन के आधार पर ही वहाँ के राजस्व के विभिन्न सिद्धान्तों की सफलता एवं असफलता का ज्ञान सरलता से किया जा सकता है तथा उसी अनुरूप राजस्व नीति में आवश्यक परिवर्तन लाये जा सकते है।
   (ब) <u>राजस्व व समाजशास्त्र</u> – उपयोगी सम्बन्ध होता है। आधुनिक युग में समाज सुधार के कार्य में सरकारें महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। सरकार अपनी राजस्वनीतियों द्वारा समाज के पिछडे वर्ग को अलग कर सकती है निरक्षरता तथा विभिन्न सामाजिक कुरीतियों को दूर करने हेतु विशेष अभियान चलाकर भारी मात्रा में धन व्यय कर सकती है।

लोक वित्त एवं निजी वित्त में अन्तर (**Difference Between Public Finance And Private Finance**) :-

डॉ डाल्टर का मत है कि "निजी तथा सार्वजनिक राजस्व में आय तथा व्यय दोनों ही दृष्टियों से अन्तर है" राजस्व एवं निजी वित्त में अन्तर के आधार निम्नवत है :-

1. आय और व्यय के समायोजन में अन्तर (**Difference in the Adjustoment of Income 8 Expenditure**) :- राज्य अपने व्यय को देखकर आय प्राप्त करता है जबकि व्यक्ति अपनी आय के अनुसार व्यय करता है। ते ते पॉव पसारिये जेती लॉबी सौर (Cut your Coat according to the cloth) वाला सिद्धान्त सदैव व्यक्ति पर लागू होता है। राजस्व का सिद्धान्त ठीक इसके विपरीत है। राज्य सर्वप्रथम यह निश्चित करता है कि उसे विभिन्न मदों पर किस प्रकार धन व्यय करना है फिर इस व्यय के आधार पर आय के श्रोतों पर विचार किया जाता है अर्थात राजस्व में कोट के आकार के आधार पर कपडे की व्यवस्था की जाती है' (Arrange for the cloth according to the size of the Coat)। बैस्टबल के अनुसार "व्यक्ति कहता हे कि मैं इतना व्यय कर सकता हूँ, वित्त मन्त्री का कथन है कि मुझे इतनी राशि की व्यवस्था करनी है।" ("The individual says, I can spend so much; The Finance Minister says, I have to raise so much-" & Bastable)
(अनेक अवसरों पर व्यक्ति विशेष को अपनी आय से अधिक व्यय करना पडता है जैसे कि शादी जन्म व मृत्यु के अवसरों पर। कुछ सीमा तक व्यक्ति अपनी आय को व्यय के अनुरूप नियमित करता है। Overtime इत्यादि के माध्यम से। इस स्थिति में उसे व्यय के साथ आय का समायोजन करना पडता है और आय के नवीन श्रोत ढूढने पडते है। इसी प्रकार कभी-कभी जब सरकार के बजट में आय, व्यय से अधिक हो जाती है तो सरकार को आय के अनुरूप व्यय का समायोजन करना हेता है जो राजस्व के सिद्धान्त के विरूद्ध है दूसरी ओर यह भी आवश्यक नहीं है कि राज्य सदैव ही अपने व्यय के अनुरूप आय प्राप्त करने में सफल हो जाये। अनेक बार सरकार को अपने व्यय कम करने होते है अतः स्पष्ट है कि राज्य व व्यक्ति की वित्त व्यवस्था में भेद केवल मात्रा में है, प्रकृति में नहीं")

2. शक्तिशाली अधिकारों का अन्तर (**Difference of Powerful Rights**) :- राज्य का व्यक्ति की अपेक्षा अधिक प्रभुत्व रहता है। राज्य अधिक शक्तिशाली होने के कारण व्यक्तियों की सम्पत्ति पर अपना अधिकार जमा सकता है, उसे हडप भी सकता है परन्तु एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सम्पत्ति नही हडप सकता। (उदाहरण- भारत सरकार द्वारा बैंकिंग का राष्ट्रीयकरण)
(यह अन्तर औपचारिक मात्र - व्यक्ति की सम्पत्ति - राज्य की सम्पत्ति क्योंकि व्यक्ति राजा का एक अंग होता है। राज्य द्वारा एक मद से दूसरे मद में व्यय ताकि अधिकतम सामाजिक कल्याण प्राप्त हो जाए।)

3. उद्देश्यों में अन्तर (**Difference in Aims**) :- व्यक्ति की अपेक्षा राज्य वर्तमान को कम और भविष्य को अधिक महत्व देता है। व्यक्ति के दृष्टिकोण में इस कथन का प्रभाव रहता है कि "दीर्घकाल में हम सब मरणशील हैं" (In the long run] we are all dead)। जबकि राज्य का जीवन अमर होता है। अतः व्यक्ति दूर भविष्य के लिए साधारणतया योजनाएँ कम बनाता है। सरकारें भविष्य के लिए काफी बडी व दीर्घकालीन योजनाएं बनाती है। एक सरकार पुल, बाँध, नहर, सडक आदि अनेकों दीर्घकालीन योजनाओं पर काफी ध्यान देती है।

यह अन्तर मौलिक नही है, केवल मात्रा का है। क्योंकि सरकार व्यक्ति की भाँति वर्तमान पर भी ध्यान देती है और अल्पकालीन विषयों पर भी ध्यान देती है। इसी प्रकार व्यक्ति भी कभी-2 सरकार की भाँति दीर्घकालीन योजनाओं पर ध्यान देता है।

4. <u>व्यय एवं कल्याण में अन्तर (**Difference in EÛpenditure and welfare**)</u> :- प्रत्येक व्यक्ति अपने सीमित साधनों को विभिन्न वस्तुओं पर इस प्रकार व्यय करता है कि समस्त वस्तुओं से प्राप्त होने वाली सीमान्त उपयोगिता समान रहे। राजस्व में व्यय करते समय अधिकतम सामाजिक लाभ के सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाता है। अतः निजी वित्त में केवल निजी कल्याण की ओर ही ध्यान देते है जबकि राजस्व में व्यय करते समय सम्पूर्ण समाज के कल्याण की ओर ध्यान देते है तथा एक व्यक्ति के कल्याण का कोई ध्यान नही दिया जाता। इस सम्बन्ध में डी मार्को का कथन है कि व्यक्तिगत वित्त व्यवस्था में व्यक्तियों की उनकी इच्छाओं को पूर्ण करने सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है, परन्तु राजस्व में राज्य की उत्पादक क्रियाओं का, जो सामूहिक इच्छाओं की पूर्ति हेतु है का अध्ययन किया जाता है।

5. <u>गोपनीयता का अन्तर (**Difference of Secrecy**)</u> :- निजी वित्त में गोपनीयता रहती है। एक व्यक्ति अपने आयद्व्यय का अपनी बचत का तथा ऋण आदि का ठीक-ठीक परिचय अन्य व्यक्तियों को नही देना चाहता। वह सोचता है कि ''बँधी मुट्ठी लाख की, खुल गयी तो खाक की।''

   इसके विपरीत राजस्व में गोपनीयता के स्थान पर प्रचार को अधिक महत्व दिया जाता है। सरकारी बजट प्रकाशित किये जाते है, विभिन्न मंचों पर व्याख्यान होते है, उन पर भिन्न-2 वर्गो द्वारा टिप्पणियाँ की जाती है तथा समाचार-पत्र में भी समालोचना की जाती है।

6. <u>साधनों की प्रकृति में अन्तर (**Difference in the Nature of Source**)</u> :- सरकार की आय के साधन लोचदार होते है जबकि व्यक्ति की आय के साधन लोचदार नहीं होते। सरकार अपनी कर की आय से सुरक्षित रहती है आवश्यकता पडने पर हीनार्थ प्रबन्धन का उपयोग भी किया जा सकता है। आवश्यकता पडने पर विदेशी ऋण तथा देशी (आन्तरिक) ऋण प्राप्त कर सकती है। निजी वित्त में व्यक्ति केवल आन्तरिक ऋण का ही प्रबन्ध कर सकता है।

7. <u>घाटे व बचत सम्बन्धी अन्तर (**Difference of Saving & Deficit**)</u> :- निजी वित्त में बचत करना अच्छा एवं बुद्धिमत्तापूर्ण माना जाता है। जबकि राजस्व में ऐसा नही है। यदि सरकार बचत का बजट बनाती है तो यह माना जाता है कि जनता पर अनावश्यक करारोपण करके अतिरिक्त आय प्राप्त की गयी है तथा सरकार के पास विनियोजन हेतु विकास योजना का अभाव पाया जाता है। विकासशील सरकारें प्रायः घाटे के बजट बनाकर विकास कार्यक्रमों की पूर्ति करती है।

8. अन्य अन्तर :-

a. सरकार अपनी आय का एक महत्वपूर्ण भाग सुरक्षा, कानून व शान्ति व्यवस्था पर व्यय करती है। व्यक्ति को इस प्रकार का व्यय नही करना पडता।
b. सार्वजनिक वित्त एक निश्चित आर्थिक नीति पर आधारित होता है परन्तु व्यक्ति के आय कमाने तथा उसके व्यय के पीछे कोई आर्थिक नीति कार्य नही करती।
c. सार्वजनिक वित्त संचालन हेतु एक शक्तिशाली संगठन की आवश्यकता होती है निजी वित्त संचालन हेतु इस प्रकार के संगठन की आवश्यकता नही होती।
d. व्यक्ति ऐसे कार्यो पर व्यय नही करता, जिनसे उसे अप्रत्यक्ष लाभ प्राप्त हो, परन्तु सार्वजनिक वित्त का अधिकांश भाग अप्रत्यक्ष लाभ देने वाली मदों पर जैसे देश की सुरक्षा, शान्ति व व्यवस्था, न्याय, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा विभिन्न सामाजिक सुरक्षाओं पर व्यय होता है।

निष्कर्ष :- अतः ''व्यक्तिगत अर्थ प्रबन्धन एवं राजस्व में आयदृव्यय दोनों मदों पर मौलिक अन्तर है और दोनों को समान्तर धुरों पर चलाना भारी भूल माना जाता है।''

लोक वस्तु तथा निजी वस्तु (**Meaning of Public and Private Goods**)

लोक वस्तु से तात्पर्य, उस वस्तु से है जिसका लाभ अविभाज्य (indivisible) होता है तथा सम्पूर्ण समाज को प्राप्त होता है चाहे कोई खास व्यक्ति इस वस्तु का उपभोग करना चाहे या न चाहे। एक उदाहरण लें। वह जन स्वास्थ्य सेवा, जिससे चेचक का उन्मूलन होता है सभी के स्वास्थ्य की रक्षा करती है, केवल उन्हीं की नहीं जिन्होंने चेचक का टीका लगाने के लिए भुगतान किया है। इसके विपरीत रोटी एक निजी वस्तु है जिसका उपभोग यदि एक व्यक्ति करता है जिसने इसकी कीमत अदा की है, तो कोई दूसरा इसका उपभोग नही कर सकता।

इस प्रकार लोक वस्तुएं वे है जिनके उत्पादन से बाह्य लाभ (External benefits) का सृजन होता है और ऐसे लाभ का उपभोग वे करते हैं जो इनके लिए भुगतान करते है और वे भी जो भुगतान नहीं करते है अर्थात लाभ का बिखराव हो जाता है इसे बिखराव प्रभाव (Spill-over Effect) कहा जाता है और इन वस्तुओं का उत्पादनकर्ता बाह्य लाभ प्रदान करने के लिए कोई चार्ज नहीं ले सकता है (Case of uncharged services)। इसका एक कारण यह है कि ऐसे बाह्य लाभ पर सम्पत्ति का अधिकार (Property right) स्थापित नहीं किया जा सकता है। दूसरा कारण है लोक वस्तुओं का विभाज्य (divisible) न होना। अतः इनके लिए कीमत नहीं ली जा सकती है। परिणाम यह होता है कि उन व्यक्तियों को भी इन वस्तुओं के उपभोग से वंचित नहीं किया जा सकता है जो कीमत का भुगतान नहीं करते है।

जिन वस्तुओं के उत्पादन से बाह्य लाभ के स्थान पर बाह्य हानि (External costs) होती है, उन्हें लोक या सार्वजनिक खराब (public bads) की संज्ञा दी जाती है। लोक हानि उन क्रियाओं को कहा जाएगा, जिनके उत्पादन या उपभोग से उन सभी बाह्य लागतों का सृजन होता है जो जनसंख्या के एक बडे भाग को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ कारखाने की चिमनी से निकलने वाले धुएं को ले सकते है जिससे आस-पास के लोगों को कपडों की धुलाई पर अधिक खर्च करना पडता है। मिल मालिक खर्च में इस वृद्धि के लिए कोई क्षतिपूर्ति नहीं करते है (case of uncompensated disservices) ।

मस्ग्रेव ने निजी तथा लोक वस्तुओं के मध्य अन्तर को स्पष्ट करने के लिए दो आधारों को चुना है, यथा (1) आवश्यकता के निर्धारण का आधार (Basis of want determination) तथा आवश्यकता की प्रकृति (Nature of wants) एवं (2) उपभोग में वर्जन (Exclusion in consumption) तथा प्रतिद्वन्द्विता की उपस्थिति या अनुपस्थिति (Presence or absence of rival)।

1. आवश्यकता की किस्में (**Types of wants**)

आवश्यकता की किस्मों के आधार पर निजी वस्तु तथा लोक वस्तु के अन्तर को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

आवश्यकता के भेद

आवश्यकता के निर्धारण का आधार	लाभ की प्रकृति	
	आन्तरिक (Internal)	बाह्य (External)
व्यक्तिगत (Individual)	निजी (Private)	लोक (Public)
आरोपित (Imposed)	मेरिट (Merit)	मेरिट (Merit)

उक्त तालिका में निजी वस्तु तथा दो तरह की लोक वस्तुओं को प्रस्तुत किया गया है। निजी एवं लोक वस्तुओं में अन्तर केवल इस बात को लेकर है कि लाभ आन्तरिक (Internal) है या बाह्य (External)। दोनों में समता इस बात को लेकर है कि दोनों ही स्थितियों में वस्तु के उत्पादन एवं उपभोग का निर्धारण व्यक्तिगत (Individual) आवश्यकता के आधार पर किया जाता है। मेरिट वस्तुएं (Merit goods) वे हैं जिनसे प्राप्त लाभ आन्तरिक हो सकते हैं या बाह्य, किन्तु इनका उत्पादन कितनी मात्रा में किया जायगा, इसका निर्धारण व्यक्ति नहीं करता, बल्कि सरकार द्वारा थोपा जाता है। अतः जहां सामाजिक वस्तुओं का उत्पादन व्यक्तियों के अधिमान के अनुसार होता है वहां मेरिट वस्तुओं का उत्पादन शासक वर्ग के अधिमान के अनुसार होता है और यह अधिमान व्यक्तियों पर उनकी इच्छा के विपरीत भी लाद दिया जा सकता है।

2. वर्जन का सिद्धान्त एवं उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता (**Exclusion Principle and Rival in Consumption**)

निजी वस्तुओं का उत्पादन बाजार सिद्धान्त तथा आर्थिक निपुणता (Economic efficiency) के अनुसार होता है। बाजार अर्थव्यवस्था दो सिद्धान्तों पर आधारित है, यथा, (क) वर्जन का सिद्धान्त तथा (ख) प्रकट अधिमान (Revealed Preference)।

वर्जन के सिद्धान्त के अनुसार केवल वे ही किसी वस्तु का उपभोग कर सकते हैं जो इसके लिए बाजार कीमत का भुगतान करते हैं। इस प्रकार A किसी वस्तु X का उपभोग करता है क्योंकि उसने इसे प्राप्त करने के लिए कीमत चुकायी है और B उसके उपभोग से वंचित रह जाता है क्योंकि उसने (B ने) कीमत का भुगतान नहीं किया। वर्जन के लिए आवश्यक है कि लोगों को सम्पत्ति पर कानूनी अधिकार (Legal right to property) प्राप्त हो।

वर्जन के सिद्धान्त के अन्तर्गत बाजार नीलामी व्यवस्था की तरह कार्य करता है। उपभोक्ता वस्तु के लिए बोली लगाता है और इस प्रक्रिया में अपने अधिमान को प्रकट करता है। इससे उत्पादनकर्ता को संकेत मिलता है और वह उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन करता है जिन्हें उपभोक्ता चाहते हैं। स्पष्ट है कि उपभोक्ता द्वारा दी गयी जानकारी के आधार पर ही बाजार यन्त्र क्रिया करता है।

इन दो सिद्धान्त के आधार पर क्रिया करते हुए बाजार द्वारा निजी वस्तुओं का निपुण प्रावधान होता है क्योंकि इन वस्तुओं के लाभ उन्हीं उपभोक्ताओं को प्राप्त होते हैं जो इनके लिए कीमत का भुगतान करते हैं। दूसरे शब्दों में, लाभ आन्तरिक होते हैं तथा उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता रहती है। अधिकांश वस्तुओं की व्यवस्था बाजार यन्त्र के द्वारा ही सम्भव है।

लेकिन कुछ ऐसी वस्तुएं है जिनका प्रावधान बाजार व्यवस्था द्वारा सम्भव नहीं है क्योंकि वर्जन का सिद्धान्त लागू नहीं होने के कारण उपभोक्ता उनके लिए अपने अधिमान को प्रकट नहीं करते। इनके उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता भी नहीं रहती है। ऐसी वस्तुओं को लोक वस्तुओं की संज्ञा दी जाती है।

3. <u>लोक वस्तु का वर्गीकरण : सामाजिक वस्तु तथा मेरिट वस्तु (**Classification of public Goods : Social Goods and Merit Goods**)</u>

लोक वस्तुओं को अक्सर सामाजिक वस्तुओं तथा मेरिट वस्तुओं में विभाजित किया जाता है। इसे निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है।

वस्तुओं का विभाजन

उपभोग	वर्जन	
	सम्भव (Feasible)	सम्भव नहीं (Not Feasible)
प्रतिद्वन्द्वी (Rival)	1	2
प्रतिद्वन्द्वी नहीं (Non-rival)	3	4

इस तालिका में वस्तुओं को प्रतिद्वन्द्विता तथा वर्जन के आधार पर चार वर्गों में बांटा गया है। स्थिति 1 में स्पष्ट रूप से निजी वस्तुएं आती है क्योंकि यहां उपभोग में प्रतिद्वन्द्विता होने के साथ-साथ वर्जन भी लागू होता है। बाजार यन्त्र द्वारा इन वस्तुओं का प्रावधान केवल सम्भव ही नहीं बल्कि कुशल भी है। बाकी तीनों परिस्थितियों में बाजार यन्त्र का सही उपयोग सम्भव नहीं है। स्थिति 2 में बाजार यन्त्र के टूटने का कारण वर्जन का सम्भव नहीं होना है, जबकि स्थिति 3 में ऐसा प्रतिद्वन्द्विता की अनुपस्थिति के कारण होता है। स्थिति 4 में ये दोनों ही बातें मौजूद है। स्थिति 3 तथा 4 में सामाजिक वस्तुएं मिलती है जबकि 2 में मेरिट वस्तुएं। इस तरह के विभाजन के पीछे मस्ग्रेव की यह मान्यता रही है, कि सामाजिक वस्तुओं की आपूर्ति उपभोक्ता के अधिमान के अनुसार होती है। किन्तु आलोचक ऐसा कह सकते है, कि विशिष्ट वर्ग द्वारा उपभोक्ता पर कुछ अंश में अधिमान लादने की जरूरत है, क्योंकि यह वर्ग अधिक शिक्षित हो सकता है, या अधि बुद्धिमान हो सकता है या इसका सम्बन्ध किसी विशेष दल के साथ हो सकता है। यह भी कहा जा सकता है, कि सरकारी बजट के द्वारा निम्न लागत के मकान या बच्चों को दूध की आपूर्ति जैसी वस्तुओं को भी प्रदान किया जाता है यद्यपि इनके